

परमार्थसार ॥

श्लो०—परंपरसाः प्रकृतेरनादिसेवान्निविष्टं यज्जघाशु होसु ।

सर्वज्ञं सर्वचराचरसंत्वामेव विष्णुं शरणं प्रमदो ॥ १ ॥

औरस्तु पराप्रकृति जोमाया तेहितेपरे औष्णिक मजातीय विषातीय स्वगत-
नेर्द रहित औ अनादि औ गुणाजो टेज मनुष्यादि देह तिन विषे बहुधा कहै
न्य नाधिक मायकर्मिके स्थितहे टिकाहे सर्वालोककहे सबका स्थान हे औ सब
चराचर विषे स्थितहे ऐमेजो तुम विष्णु हौ तिनके मै शरण को प्राप्रहौ ॥ १ ॥

आत्मानुरागौ निष्ठिनीपिनी कोमलजोपिनाचासतिनैजतेच ।

आश्चर्यनेतन्म गह्विष्णुकाभेज्जगत्पराशरैरुतैस्त्वैव ॥ २ ॥

ममूद तुन्य आत्मा विषे मय लोक टिका है नतौ स्वादुनेह न देखै
अश्चर्य कीवातहे फूठे ससारमे वृथा रमि रहाहे ॥ २ ॥

गर्भवासजन्मजरामरखविप्रयोगदुःखाधौ ।

जगदान्धोक्त्रनिबन्धं प्राहगुरुं प्राञ्जलिः शिष्यः ॥ ३ ॥

गर्भगमजन्म वृक्षाण मन्नात्रिहुरन् ए दु ख समुद्रविषे बूडा जगतको
देखिके शिष्य हाथ जोरिके गुरु से बोला ॥ ३ ॥

त्वं मां गवेद्वेत्तामेत्तासंशयगणस्वसत्यवक्ता ।

संसारार्थवतरणोपप्लवङ्गस्य हं भगवन् ॥ ४ ॥

हे गुरो तुम मागपेट को जानतेहो औसदहके द्वेरि करने वाले होयत्य
बोलोहो मोसमार ममूदमे छूटनेका उपाय पृच्छना होमो कहिये ॥ ४ ॥

दीर्घास्मिन् संसारे संसरतः कस्य केन संबन्धः ।

कर्मशुभाशुभफलान्यनुभवति गतागतैरिहकः ॥ ५ ॥

दीर्घास्मिन् संसारे संसरतः कस्य केन संबन्धः ।

बड़ा भारी संसार तिममें जन्म मरण कोषायके जो घूमिरहे हैं तिनमें के
हिके साथ केहिका संबंध है औ कर्म के पूण्य पाप फलको इह संसार में चल
फिरिके कौन भोगकर्ता है ॥ ५ ॥

कर्म गुण जाल बद्धो जीव संसरति कोश कारइव ।

मोहबंध कारगहनात्तस्य कथं बंधनामोक्षः ॥ ६ ॥

कर्म रूप सुतराके जालमें जीवबंधा है सो संसार में सुख दुःख भोग करता
है जैसे कुशहरी का कीड़ा मकान बनायके बंधिजाता है सो मोह बंधकार रूप
बंधनसे कैसे कूटे सो कहौ । ६ ॥

गुण कर्म विभाग दो धर्मा धर्मौ निबंध कौ भवतः ।

इति गदितं पूर्ववाक्यैः प्रकृतिं पुरुषं च मे ब्रूहि ॥ ७ ॥

जो कोई गुण कर्म के विभाग को जानता है तेहिका धर्म अधर्म बंधन नहीं
करते हैं यह बात महात्मा लोग कहि गये हैं सो मायाव जीव का विभाग
कहौ ॥ ७ ॥

क्षित्या धारो भगवान्ष्टष्टः शिष्येण तं स होवाच ।

विदुषामप्यतिगहनं वक्तव्यमिदं शृणु तथा पितृ ॥ ८ ॥

ऐसा शिष्य का वचन सुनिके भगवान् शेषजी शिष्य से बोलने हे शिष्य यह
घात विद्वानों के जानने योग्य नहीं है तथापि तুম सुनो मैं कहता हूं ॥ ८ ॥

सत्यमिव जगदसत्यं मुक्तप्रकृतेरिदं कृतं येन ।

तं प्रणिपत्योपेन्द्रं वक्ष्ये परमार्थ सारमिदम् ॥ ९ ॥

माया का किया हुआ यह असत्य संसार को निषे ने सत्य कर दिया ऐसे
उपेन्द्र अर्थात् विष्णु को प्रणाम करके यह मुख्य सांगंश धर्मेन करता हूं ॥

अव्यक्ता दग्धमभृदगडाद्ब्रह्मा ततः प्रजासर्गः ।

मायामयी प्रकृतिः संक्षीयते इयं पुनः क्रमशः ॥ १० ॥

मायासे अण्ड उत्पन्न भया अण्डमेव तत्र उत्पन्न भये तिनसे प्रजा उत्पन्न होते
भये फिर माया यह लोग हो रंजाती है यही क्रम सदा चला जाता है ॥ १० ॥

मायामयोषचे तो गुण करण गणः करोति कर्माणि ।

तदधिष्ठाता देही सचेतनो न करोति किंचिदपि ॥ ११ ॥

मायारचित गुणजो सत्त्वादिक तिन करिके युक्तजो इन्द्रिया हैते हैं अचेत नपैकर्म करती हैं औइन्द्रियो का मालिक जीव सो चेतन्य भी है कुछ नहीं करता है ॥ ११ ॥

यद्वदचेतनमपिसन्निकटस्थेभ्रामकैभ्रमतिकोहं ।
तद्वत्करणसमूहश्चेष्टतेचिदधिक्षितेदेहे ॥ १२ ॥

ऐसे लोहा जड है जबचुवरु पत्थर लोहा के समीप जाता हैतब लोहा चलता है इसी तरह से चेतन्य युक्त देह बिषे इन्द्रिया सब काम करती है ॥ १२ ॥

यद्वत्स्वित्त्युदितेकरोतिकर्माणिलीवलोकैयं ।

नचतानिकरोतिरविर्नकारयतितद्वदात्मापि ॥ १३ ॥

ऐसे सूर्य के उदय बिषे सब जीव काम करते हैं सूर्य कुछ काम नहीं करते न करवाते हैं ऐसे ही अत्मा कुछ नहीं करता इन्द्रिया काम करि रही है ॥ १३ ॥

मनसोऽङ्कारविमूर्छितस्यचैतन्यविवोधितस्येह ।

पुरुषाभिमानसुखदुःखभावनाभवतिमुदस्य ॥ १४ ॥

अहंकार करि मूर्छित चेतन्य करि जगाया गया आत्तानी मन को पुरुषाभिमान रूप सुख दुःख भावना होती है ॥ १४ ॥

कर्ताभोक्ताद्रष्टास्मिकर्मणासुत्तमादीनां ।

इतितत्स्वभावविमलोऽभिमन्यतेसर्वगोऽथात्मा ॥ १५ ॥

स्वभावे ते निर्मल औ सब के बिषे वर्त्त मान ऐसाजो आत्मा पूण पाय रूपजो कर्म तिनका कर्ता वि भोक्ता व देखेया मैहो यह अपना को मानता है ॥ १५ ॥

नानाविधवस्तूनांवर्णान्धर्त्तैयथाऽमलः ।

स्फटिकःतद्वदुपाधेर्गुणभावितस्यभावंविमुर्धत्ते ॥ १६ ॥

ऐसे मय काल मोस्फटिक पत्थर सुपेदे है औ नाना प्रकार के नील पीतादि रंगको धारण कर्ता है तैसे ही शुद्ध आत्मा गुण युक्त जो उपाधि देह है तिनके भावको धारण करि लेता है ॥ १६ ॥

गच्छति गच्छति सुखे दिनकर विवस्थिते स्थितिं याति ।

अतः कारणे गच्छति गच्छत्यात्मा पितृदिह ॥ १७ ॥

जैसे जलके चलते हुये सूर्य का चित्र चलता है जलके स्थित होते स्थिति को प्राप्त होता है तैसेही आत्मा जो जीव सो मनके चलते हुये चलता है मनके स्थिर भये स्थित होही जाता है ॥ १७ ॥

राजर्हस्योपि यथाशिविविंशः प्रकाशते जगति ।

सर्वगतो पितृयात्मा बुद्धिस्थोपि दृश्यतामेति ॥ १८ ॥

ऐसे राजा नही देखि परता है पै चन्द्रमा के चित्रमे जाय कै जगत मे देखि परता है तैसेही आत्मा सर्व गत है बुद्धि विषे स्थित होता है तब देखि परता है ॥ १८ ॥

सर्वगतं तन्निष्कम्पमद्वैतं च चेतसा गम्यं ।

यद्विगर्तं प्रोपलभ्यते शिष्यो ध्यंतत् ॥ १९ ॥

सो सर्व गत आत्मा पित्त करिके जाना जाता है कैसा जिसका दूसरा नहीं ओ' उपमा 'नही' है जो 'बुद्धि' मे गत आत्मा सोई ब्रह्म जानो है शिष्य ॥ १९ ॥

आदयै मलरहिते यद्गुरुपविचिन्वते लोकः ।

आलोकयति तयात्मा विशुद्धबुद्धौ स्वमात्मानम् ॥ २० ॥

ऐसे निर्मल मोक्ष विषे मय लोग अपना रूप देखते हैं इसी तरह यह आत्मा जो वे विशुद्ध बुद्धि विषे अपने गुरु रूपको देखता है ॥ २० ॥

बुद्धि मनोऽहंकारास्त्रिगुणाः सत्त्वतृणगणाः ।

संसारसर्गपरिरक्षणक्षयः प्राप्नोति येन ॥ २१ ॥

बुद्धि मन अहंकार शब्दादिक प्रिय इन्द्रिया पच महा भूत संसार की उत्पत्ति रक्षा प्रलय एवमः माया रचित है इसी से त्याग्य है ॥ २१ ॥

धर्माधर्मौ सुखदुःखकल्पनाग्नेन नरकवासस्य ।

उत्पत्तिनिवनेवर्णयन्नाः न संतीह परमार्थे ॥ २२ ॥

परमात्मा के विषे धर्म अधर्म सुख दुःख स्वर्ग नरक बाध उत्पत्ति नाश धर्मा नाशमये सोई नहीं है ॥ २२ ॥

मृगतृष्णायासुदकच्युतौरजतंमुंजगोरज्ज्वा ।

तैमिरिकचन्द्रयुगैर्वज्जातमपिलंजगद्रूपं ॥ २२ ॥

यह जगत् सब एक धर्म रूप है जैसे मृगतृष्णामे जल जैसे मूतीके विषे चांदी रज्जुविषे सर्प तिमिरीके जैसे दौ चन्द्रमा ये सब मिथ्या हैं ऐसे आत्मा विषे जगत् भांतिमात्र है ॥ २२ ॥

बद्धहिंनकारएकैविभातिसखिलाशयेपुसर्वेषु ।

तद्वत्कजोपाधिष्ववस्थितोभातिपरमात्मा ॥ २३ ॥

ऐसे एक सूर्य जितने जलपात्र है तिनविषे सबमे प्रतिबिंब होता है तैसे परमात्मा जेतनोदेह है तैन सब विषे स्थित है ॥ २३ ॥

खमिबंधटादिष्वंतर्बहिःस्थितं बद्धा सर्वपिंडेषु ।

देहोहमित्यात्मनिबुद्धिः संसारबंधाय ॥ २४ ॥

ऐसे धटादिको विषे व धटादिकों के बाहर आकाश सबमे है ऐसेही सब देह न विषे बद्ध व्याप्त है आत्मा के विषे में देह है। यह बुद्धि बंधन को करती है ॥ २४ ॥

सर्वविकल्पहीनः शुद्धो बुद्धोऽजरोऽमरः शान्तः ।

अमलोऽसृष्टाद्विभातश्चेतन आत्मा खवद्व्यापी ॥ २५ ॥

जिसमे कोई कल्पना नहीं है शुद्ध है चानरूप है अजर अमर है शान्त है मलरहित है सदा प्रकाशित है ऐसा चैतन्य आत्मा आकाशको नादे सब में व्याप्त है ॥ २५ ॥

रसफणितशर्करिका गुडखंडाविकृतयो ययैवैजोः ।

तद्वदयस्यामेदीः परमात्मन्येव वज्ररूपाः ॥ २६ ॥

जैसे 'लखके रस' व 'राव वंशकर गुड मिथो ए अनेक विकृति हैं ऐसेही परमात्माविषे बहुत अंशस्या भेद है ॥ २६ ॥

विज्ञानांतर्यामी प्राणविराटदेहजातिपिण्डांताः ।

व्यवहारीस्तस्यात्मन एतेऽवस्थाविशेषाः स्युः ॥ २७ ॥

ज्ञान, अन्तर्यामी, प्राण, विराट, देह, जाति, पिण्ड, ए' व्यवहार सब आत्माकी अवस्था होते हैं ॥ २७ ॥

रज्ज्वान्नास्तिभुजंगः सर्पभयंभवतिहेतुनाकेन ।

तद्वद्वैतविकल्पभांतिरविद्यानसत्येयम् ॥ २८ ॥

रज्जुमेसर्प है नहीं सर्प से भयकोन कारण से होती है इसीतरह द्वैत विकल्प भ्रमभाविया है द्वैत सत्य नहीं है ॥ २८ ॥

एतदंधकारं यदनात्मन्यात्मभावनाभांत्या ।

न विंदति वासुदेवं सर्वात्मानं न राममुढाः ॥ २९ ॥

भ्रमतेजो देहविषे आत्म मानते है यह अंधकार है मूढ अज्ञानी मनुष्य इसीसे सर्वात्मा वासुदेवको नहीं पायते है ॥ २९ ॥

प्राणाद्यनंतभेदैरात्मानं संवित्प्रेन्द्रजालमिव ।

संहरति वासुदेवः स्वविभूत्या क्रीडमान इव ॥ ३० ॥

जोमा इन्द्रजाली बहुततरह से इन्द्रजालकी माया देखावता है तेसे भगवान् प्राण आदि अनेक भेद करिके आत्मा को फेलाई देता है फिर अपनी माया करिके संहार करिलेता है जैसे बालक खेलते है सबको ज फेलाय के फिर समेटि धरते है ॥ ३० ॥

चिभिरिव विश्वतैजसप्राज्ञैस्तैरादिमध्यनिधनाख्यैः ।

जाग्रत्स्वप्नमुषुप्तैर्भूमभूतैराच्छादितं तुरीयम् ॥ ३१ ॥

तुरीयजो सब अवस्था में एक रूप रहता है भगवान् सोई विश्व तैजस प्राज्ञओ आदि मध्य अन्त जाग्रत स्वप्न मुषुप्ति ए भ्रमभूतजो अवस्था है तिन करिके मूँटा है ॥ ३१ ॥

मोहयतीवात्मानं स्वमायया द्वैतरूपया देवः ।

समलभ्यते स्वयमेव गुहागतं पुरुषमात्मानम् ॥ ३२ ॥

ईश्वर द्वैत रूपजो अपनी माया है तेहि करिके अपना को ऐसा मोहित करि देता है यक्कोश मयगुहा विषे प्राप्त आत्माको अपनेसे प्राप्त होई जाता इसीप्रकार ईश्वर अपनेही आधोन है किसीके चयनही है ॥ ३२ ॥

ज्वलनाद्गोमेद्भूतिरिह विविधा कृतिरं वरेयया ।

तद्वद्विलोस्यति स्खमायया द्वैतविस्तरा भवति ॥ ३३ ॥

जोमे अग्निसे धुवा उत्पन्न भया आकाशविषे जायके नानारूप होई जाता तेसेही यिष्णु से उत्पन्न सृष्टि माया करिके द्वैतसे बड़े विस्तार युक्त होई लाती है ॥ ३३ ॥

शांतइवमनसिशांतेहृष्टहृष्टइवमुदइवमुद ।

व्यवहारस्थःसपुनःपरमार्थतईश्वरोभवति ॥ ३४ ॥

ईश्वरपरमार्थमे स्थित होयके ईश्वरहै व्यवहार में स्थित होइके व्यवहार ऐसा भाषित होताहे सोई वर्णन करताहूँ जयमन शांतहोता है तबशांत सा मालूम होताहे जयमन प्रसन्न होता है तब प्रसन्न मालूम होता हैजय मन मूढ होता है तयमूढ मालूम होताहै फिर ईश्वर का ईश्वर ॥ ३४ ॥

जलधरधूम (जो)भिर्नमलिनोक्रियतेयथागगनतलम् ।

तद्वत्प्रकृतिविकारैरपरामृष्टःपरःपुरुषः ॥ ३५ ॥

जैसे मेध व धुवां व धूरिइन करिके आकाशयुक्त भी मलिन नहींहोतायोही परम पुरुष ईश्वर मायाके गुणन करिके लिप्त नहीं होताहे ॥ ३५ ॥

एकस्मिन्नपिचघटेधूमादिमलादृतेचघटाःशेषाः ।

नभवन्तिमंलोपेतायद्वज्जीवोतद्वदिह ॥ ३६ ॥

जैसे एकघड़ा धूमके मेलसे मेलामया तब सबघट मेल नहींहोते योंही जीव एक देहमे दुःखादि युक्त होताहै सबते दुःखी नहींहोता ॥ ३६ ॥

देहेन्द्रियेषुनियताःकर्मगुणकुर्वतेस्वभोगार्थम् ।

नाहंकर्तानममेतिजानतःकर्मनैववभाति ॥ ३७ ॥

गुण सत्वादिक देह इन्द्रिया मे सदा बसतेहैं जीवके भोगार्थ कर्मकरते हैं मे नहीं करता हूँ मेरे कर्म नहीं हैं यह जानने वालेको कर्म नहीं बाधि सकतेहै ॥ ३७ ॥

अन्यशरीरेणकृतंकर्मभवेद्येनदेहउत्पन्नः ।

तदवश्यंभोक्तव्यंभोगादेवक्षयोऽस्तिनिर्दिष्टः ॥ ३८ ॥

पूर्वजन्मके शरीर करिके कर्म कियेगये जिनकर्मोंमे देहउत्पन्नमई तौन कर्म अवश्य भोगकिया चाहिय वे कर्म भोगनेसे नाशहोते है ॥ ३८ ॥

प्रागज्ञानोपचितयत्कर्मज्ञानशिखिशिखावृद्धं ॥

वीजमिवदहनदग्धंजन्मसमर्थंनतद्भवति ॥ ३९ ॥

पहिले बिना जाने जा कर्म किया फिर ज्ञान उत्पन्न मया तौ ज्ञानरूप अग्निमे जलिजाते फिर जन्मनही दे सक्ते हैं जैसे अग्निमे जलाबीज नहीं जमता है ॥ ३९ ॥

ज्ञानोत्पत्तिके तत्त्वः क्रियमाणं कर्म यत्तदपि नास्ति ।

नक्षिप्यतिकर्तारं पुष्करपर्णं यथावारि ॥ ४० ॥

ज्ञानोत्पत्तिके उपरांत ज्ञानोच्चे कुछ कर्म कर्ता है तैहिकरिक्के-लिप्पनहीं होता जैसे जल कमलके पत्ते में नहीं लपटता है ॥ ४० ॥

वाग्देहमानसैरिहकर्मचयः क्रियत इति विबुधाः प्राहुः ।

एकैपि नाहमेपां कर्ता तं कर्मणा मन्त्रि ॥ ४१ ॥

गणित कहते हैं वाणीमन देह ये कर्म करते हैं, ज्ञानोत्पत्ति है मैं एक इन कर्मोंको नहीं कर्ता हूँ ॥ ४१ ॥

कर्मफलवीजनाशाज्जन्मो विनाशेन चात्र सन्देहः ।

बुधैव मपागततमः सवितेव विभाति मारुतः ॥ ४२ ॥

जन्म कर्मफलके बीजको नाशप्रया तब जन्मको नाशक है जन्म नहीं होता है यह बात सन्देह रहित है जो यह जानता है सो सदा तेजस्व्य मूर्ख की भाँति प्रकाशित रहता है ॥ ४२ ॥

यदि पीका तू लंपव नो दूतं दशदिशो याति ।

महाशितहृद् ज्ञाते तदेव कर्म्याणितत्त्वविदः ॥ ४३ ॥

जैसे मूँके धुआँ पवनके वेगमें दशदिशाको म प्र हो जाता है ऐसे ही ब्रह्मज्ञान पैदा भये तत्त्ववेत्ताके कर्म उडिजाते हैं ॥ ४३ ॥

जीरादुद्धृतमाज्यं क्षिप्तं यद्वनपूर्ववत्तच्छिन्ना ।

प्रकृति गुणैश्च स्तद्वत्पृथक्कृतस्तच्चैव नास्ति ॥ ४४ ॥

दूधमें घृतकाठिलिया फिर दूधमें छोड़नेमें नहीं दूधमें मिलता है तैसे ही चैत्य मायाके गुणोंमें जय अलग भया फिर जीवत्त्वको नहीं प्राप्त होता है ॥ ४४ ॥

गुणमयमाया गहनं निर्दूय यथा तमः सहस्रांशुः ।

वाद्याभ्यंतरचारी सैन्धवघनवद्भवत्येकः ॥ ४५ ॥

जैसे मूर्ख अंधकार को दूर करके सबते प्रकाश करते हैं तेमही पुन्य माया के गुणके घनको दूर करके बाहर भीतर विचरता है जैसे मिथुका पहाड़ निर्मल होता है तेम निर्मल रहित है ऐसा होई जाता है ॥ ४५ ॥

यद्वद्देहावयवाः सदेव तस्याविकारजातानि ।

तद्वत्सायरजंगममदैतद्वैतवद्भाति ॥ ४६ ॥

जैसे माटी से देह अंगमय घटादिको है सोपृथक् मालूम होते है तैसेही स्यावर जगम हैं अद्वैत द्वैत सो मासित होता है ॥ ४६ ॥

एकस्मात्क्षेत्रज्ञाद्विज्ञानक्षेत्रज्ञातयोजाताः ।

लोहगिजादिवदहनात्संततोविस्फुलिंगगणाः ॥ ४७ ॥

एक ईश्वर क्षेत्रज्ञ से बहुत क्षेत्रज्ञ की जाती जीव रूप उत्पन्न होती है जैसे लोहगल पते जो अग्नि है तिनसे बहुत चिनगागी निकलनी हैं ॥ ४७ ॥

तेषुणसंगमदोषावद्वास्वधान्यजातयः स्वतुपैः ।

जन्मलभंते तावद्याश्च न ज्ञानाद्विनादग्धाः ॥ ४८ ॥

ते क्षेत्रज्ञ जाती, गुण के साथ दोष होने से बचे हैं तबलगे जन्म मरणको प्राप्त होते हैं जब तक ज्ञान अग्नि करि नही जलते जैसे चाउर जयादिक बूझो से बचे हैं तब तक जलते है बूझो अलग भय नही जलते ॥ ४८ ॥

विगुणाच्चैतन्यात्मनिसर्वगतेऽवस्थिताखिलाधारे ।

कारुतेऽष्टिमविद्यासर्वत्रसृशतेनयानात्मा ॥ ४९ ॥

सबमें स्थित सबका आधार भूत आत्मा जो चैतन्य रूपतामें स्थित विगुणात्मिका अविद्या रूपा माया सृष्टिको करती है परन्तु आत्मा को स्पर्श नही करसकी है ॥ ४९ ॥

रज्जांभुजंगहेतौ प्रभवविनाशौ यथानस्तः ।

जगदुत्पत्तिविनाशौ न तत्कारणे स्तस्तद्वदिह ॥ ५० ॥

जिस उत्पत्ति विनाशको कारण सर्प है वह उत्पत्ति विनाश रज्जुमें नही होता है येमेही जगत को उत्पत्ति विनाश जगत्कारण ईश्वर त्रिपे नही होते है ॥ ५० ॥

जन्मविनाशनगमनागमनमलैः संगवियर्जितो नित्यं ।

आकाशद्वघटादिषु सर्वात्मा सर्वतोपेतः ॥ ५१ ॥

सबसे अलग सबका आत्मा जन्म विनाश गमन आगम रूप मलोकरिके नित्यही रहित है जैसे घटादि वस्तु विषे आकाश सबमें सबसे अलग है ॥ ५१ ॥

कर्मशुभाशुभजनितैः सुखदुःखैर्योगो भवत्युपाधीनां ।

तत्त्वसर्गाद्वद्वस्तस्त्वरसंगादतस्त्वरवत् ॥ ५२ ॥

गुण पाप कर्मों से उत्पन्न सुख दुःख जिन करिके देहादिकों को संयोग

होता है तिन देहादिकों के संगर्ग से आत्मा भी बद्ध होता है वस्तु से बद्ध नहीं है जैसे चोर चोरी किया बांधा गया चोरके संगी माता पिता चोरी नहीं की चोर बांधे जाते हैं ॥ ५२ ॥

देहगुणकरणगोचरसंगः पुरुषस्य यावदिह भवति ।

तावन्मायापाशैः संसारे बद्ध इवाभाति ॥ ५३ ॥

जबतक जीवको देह इन्द्रिय विषय का साथ है तब तक संसार विषे माया की फंखरी करिके बांधा ऐसा मालूम होता है ॥ ५३ ॥

मातृपितृपुत्रवान्वधनभोगविभागसंमृढः ।

जन्मजरामरणमये चक्र इव भ्राम्यते जंतुः ॥ ५४ ॥

माता पिता पुत्र वंदु धन भोगमें संयुक्त जीव जन्म मरण जरा रूप चक्र में भ्रमा ऐसा घूमता है ॥ ५४ ॥

लोकव्यवहारकृतां यद्देहाविद्यामुपासते मूढाः ।

ते जननमरणधर्माणो ह्यन्वतमपत्यं विद्यन्ते ॥ ५५ ॥

जो आशानी जीव लोकव्यवहार कृत आशान में फसे रहते हैं तिनका जन्म मरण नहीं छूटता वे अन्यनरकमें प्राप्ति होके दुःखी होते हैं ॥ ५५ ॥

हिमफेनबहुदा इव गणस्य धूमोद्गमो यथा बन्धः ।

तद्वत्स्वरूपभूता मायै पाकीर्तिता विष्णोः ॥ ५६ ॥

जैसे जलमें घीतलता व फेन व बुल्ला होते हैं वैसे अग्नि में धुंवा होता है तैसेही विष्णु की माया कहो जाती है ॥ ५६ ॥

एवं द्वैतविकल्पांश्च मस्वरूपां विमोहिनीं मायां ।

उत्सृज्य सकल निष्कलमद्वैतं भावयेद्ब्रह्म ॥ ५७ ॥

ऐसे द्वैत की कल्पना भ्रमरूप ओ सब को मोहावती माया को छोड़ि के संपूर्ण कलाहीन अद्वैत ब्रह्म की भावना करे ॥ ५७ ॥

यद्ब्रह्म लिले सलिलं चीरे चीरं समीरणे वायुः ।

तद्ब्रह्म लिले ब्रह्मणि भावनया तन्मयत्वमुपयाति ॥ ५८ ॥

जैसे जलमें जल मिलि जाता है दूध में दूध मिलि जाता है वायु में वायु मिलि जाती है तैसेही जीव भक्ति करिके ब्रह्मरूप होय जाता है ॥ ५८ ॥

इत्थं द्वैतसमूहे भावनया न ह्यभावमुपासते ।

को मोहः कश्चोक्तश्चैवं ह्यावलोकयतः ॥ ५८ ॥

इसी तरह से संसार विषे भक्ति करि कै ब्रह्म की उपासना करते तिन को मोह व शोक नहीं होता वे सब ब्रह्म मय देखते हैं ॥ ५८ ॥

विगतोपाधिः स्फटिकः स्वप्रभयाभाति निर्मलो यद्वत् ।

चिद्दीपः स्वप्रभया तथा विभाती हरिरुपाधिः ॥ ६० ॥

जैसे स्फटिक पत्थर का रंग छुड़ाइ डारै तौ अपने तेज करिके निर्मल शोभा को प्राप्त होता है तैसेही चैतन्य दीप उपाधि रहित होने से अपने तेज करिके प्रकाशित होता है ॥ ६० ॥

गुणकरणगणशरीरप्राणैस्तन्मात्रजातसुखदुःखैः ।

अपराष्ट्टा व्यापी चिद्गोचं सदा विमलः ॥ ६१ ॥

गुण सत्वादि इन्द्रिय गण ओषादि शरीर प्राण इनसे उत्पन्न सुख दुःख से रहित व्यापक मल रहित चैतन्य रूप सदा है ऐसी मन में भावना रखे ॥ ६१ ॥

द्रष्टा यो तादाता स्पर्शयितारसयिता गृहीता च ।

देही देहेन्द्रियधीविबर्जितः स्थान्नकर्ता सौ ॥ ६२ ॥

देखता है सुनता है सगन्ध को लेता है स्पर्श करता है रस को जानता है पाहक है ऐसा जो जीव है सो देह इन्द्रिय से अलग है कुछ नहीं करता है ॥ ६२ ॥

एकानैक चावस्थितो ह्यमैश्वर्ययोगतो व्याप्तः ।

व्याप्या काशवद्खिलं न कश्चिदनास्ति सन्देहः ॥ ६३ ॥

एक है औ आकाश को नाई सबमें स्थित है अहमैश्वर्य करिके सर्वत्र व्याप्त है इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ६३ ॥

आत्मैवेदं सर्वं निष्कलं सकलं यदैव भावयति ।

मोहगहनाद्विसृज्य देव परमेश्वरो भवति ॥ ६४ ॥

निष्कल कला रहित औ कला सहित जो कुछ है सो सब आत्माही है जो कुछ देखि मुनि पढ़ना है यह बात जय २ भावना करै तब मोह से छूट जाता है परमेश्वर हो जाता है ॥ ६४ ॥

सिद्धान्तागमतर्कोदिपुत्रमंतियेयद्रागांधाः ।

अनुमोदाभस्तेपांसर्वात्मनादिधिया ॥ ६५ ॥

सिद्धांत शास्त्र तर्कोदिको के विषे ये रागांध होई के भ्रमंत है तिनको सब जिये आत्मशास्त्रो जो धुद्धि है तेहि करिके हम प्रसन्न होतैं हैं ॥ ६५ ॥

सर्वो कोरो भगवानुपास्यते येन येन भावेन ।

तंतं भावं भूत्वा चिन्तामणिवत्समर्थ्येति ॥ ६६ ॥

सर्व स्वरूप भगवान है मनुष्य जिस रूप की भावना करते हैं सो उपासना करते हैं सोई सोई रूप धारण करिके भगवान प्राप्त होतैं हैं जैसे चिन्ता मणि पत्थर ॥ ६६ ॥

नारायणमात्मानं ज्ञात्वा सर्गस्थितिप्रलयहेतुम् ।

सर्वज्ञात्सर्वभूतसर्वशर्वेश्वरो भवति ॥ ६७ ॥

जब जीव अपने को सृष्टि शालन सहार कर्ता जो नारायण तन्मय जानता है तब सर्वज्ञ हो जाता है सर्व स्वरूप समस्त मिला परमेश्वर को सबमें देखता है ॥ ६७ ॥

आत्मज्ञस्मरति शुचं यथा हि दानं विभेति कुतश्चित् ।

वृत्त्यो रपि न रणभयं न भवत्यन्यत्कुतस्तस्य ॥ ६८ ॥

जिसको देखिके किसीको भय न उत्पन्न होय ऐसा आत्मज्ञ विद्वान् कभी शोचको नहीं प्राप्त होता और मरण से भय नहीं होती और भय कैसे होय ॥ ६८ ॥

क्षयवृद्धिवद्वधातकवधनमोक्षैर्विधर्जितं नित्यं ।

परमार्थतत्त्वगेकं क्षतोऽन्यत्तददृष्टं सर्वम् ॥ ६९ ॥

जिसका क्षय और वृद्धि और वध और धातक और वधन मोक्ष और कोई नहीं है ओ नित्य है ऐसा परमार्थ तत्त्व ऐसे मुख्य तिमते अन्य पदार्थ सब भूटें हैं ॥ ६९ ॥

एवं प्रवृत्तिपुरुषं विज्ञाय निरस्तकल्पनाजालः ।

आत्मा नारायः प्रथमसमास्थितः केवलो भवति ॥ ७० ॥

यह प्रकार ते माया व ईश्वर को जानने से कल्पना को जाल छूट जाता है अस्मिराम होयके शांति को प्राप्त निर्विकार हो जाता है ०० ॥

नैडकंदलिवेगुगणानश्य तियथास्वपुष्यमासाद्य ।
तदस्वभावभूताः स्व भावनां प्रमथनश्यति ॥ ७१ ॥

रामशर केला बाँध ए जव फूने तब नाश होजाते हैं तैसेही जीव जब अपने स्वरूप को प्राप्त होते हैं तब मुक्त हो जाते हैं स्वभाव नाश होइ जाते हैं अपने स्वरूप को प्राप्त होइके ॥ ७१ ॥

भिन्ने ज्ञानग्रंथौ हिन्ने संशयगणेशुभाशुभेक्षीणे ।
दग्धे च जन्मबीजे परमात्मानं हरियाति ॥ ७२ ॥

जब जीवकी अज्ञान की गांठि छूटिजाती है संदेह नाश होइ जाता है पाप पुण्य क्षीण होइ जाते हैं कर्म रूप बीज जरिजाता है तब वह जीव परमात्मा को प्राप्त होइ जाता है ॥ ७२ ॥

मोक्षस्थनैव किंचिद्वा मास्ति न चापि गमनमन्यत्र ।
अज्ञानमवग्रथे भेदो यस्तं विदुर्मोक्ष ॥ ७३ ॥

मोक्षका कोई घर नहीं है और न कहीं और ठौर में जाना है जो अज्ञान की ग्रंथि का छूटना है मोक्ष मोक्ष है यह बात महात्मा कहि गये हैं ॥ ७३ ॥

बुध्दैवमसत्यमिदं विष्णौ मायात्मकं जगद्रूपं ।
विगतद्वंद्वोपाधिर्भोगासंगो भवेच्छांतः ॥ ७४ ॥

विष्णु की माया मय ऐसा यह जगत् रूप छूटा जानि के द्वैत उपाधि छोड़ि देय भोगमें संग न करे तो शांत चित्त होय ॥ ७४ ॥

बुध्धाविभक्ता प्रकृतिं पुरुषः संसारमध्यगो भवति ।
निर्मुक्तः सर्वकर्मभिरं वृजपच यथा सत्तिलैः ॥ ७५ ॥

संसार के बीच में टिका जो जीव हैं सो माया को अपना से अलग जाने तो सब कर्मों से छूटि जाइ जैसे कमलका पत्ता जलमें रहता है जल फेरिके लिए नहीं होता है ॥ ७५ ॥

त्वक्तत्वाकर्मविकल्पानात्मसंमनःकेवलं द्रष्टव्यम् ।
 दग्धेत्थन इव बन्धिः सर्ववात्साभवेच्छात्तः ॥ ७६ ॥

जब आत्मा विकल्पों को छोड़के मन को आत्मा विषे लगाता है तब सब ते भात रूप हो जाता है जैसे रंघन जरि गया तब अग्नि शांत हो जाता है ॥ ७६ ॥

अदनं यद्वा तद्वा सन्नीतो येन केनचिच्छात्तः ।

यच्च कचन गायी विमुच्यते सर्वभुतात्मा ॥ ७७ ॥

जो पाया सो भोजन कर लिया जो कोई ल्यवाइ गया तहाँ चला गया जहाँ पाया तहाँ सोयरहा ऐसा शातरूप सब जावन को आत्मा हो जाता है संसारसे छूटिज ताहै ॥ ७७ ॥

इयमेधयत सहस्राणि यः कुरुते ब्रह्मघातकश्चाणि ।

परमार्थं विन्न पुण्यैर्न च पापैः स्पृश्यते विमलः ॥ ७८ ॥

ब्रह्मघाती हजार अश्वमेध करे पुण्य करिके युक्त न होता हजारो ब्राह्मण मारे पाप करिके युक्त नहीं होता सदानिर्मल रहता है ॥ ७८ ॥

मदकोपहर्षमत्वा विपादभयपरपवर्ज्यं वाक्बुद्धिः ।

निस्तोच वपट्कारो जडवद्विचरे दगाधमतिः ॥ ७९ ॥

जो चानी बड़ा बुद्धिमान् न तो मतबार रहै न रिमकरे न खुमो होय न किमीका दोइ करे न विपादकरे न डिरायन कही बात कहै न पाठ करे न मच जपे जईकी तरह घुमे ॥ ७९ ॥

उत्पत्तिनाशवर्जितमेव परमार्थं सुपलभ्यते दृष्टव्यम् ।

सकलजन्मासर्वगतस्तिष्ठतियथेष्टम् ॥ ८० ॥

जिपका उत्पत्ति विनाश नहीं ऐसे परमात्मा को प्राप्त होइके दृष्टार्थ हो अपना जन्म सुफल करता है स्वेच्छा पूर्वक वसता है ॥ ८० ॥

व्यापिनमभिन्नमित्यसर्वात्मानं विधेत्तनात्वं ।

निरूपमपरमानंदं यो वेद स तन्मयो भवेति ॥ ८१ ॥

अथमे व्यापी मयसे मित्र नहीं सयका आत्मा नानात्व जिसकी नहीं ऐसे परमात्मा को जो जानता है सो परमात्म हो जाता है ॥ ८१ ॥

तीर्थैस्वपंचगृहेवानष्टस्मतिरपिपरित्यजन्देह ।

ज्ञानीसमकालमुक्तःकैवल्यंयातीहविगतशोकः ॥ ८२ ॥

जिसको कुछ सुधि नहीं है ऐसे ज्ञानीका देह तीर्थ में या डोमके घर में छूटि जाय तो केवल ब्रह्म को प्राप्त होय कोई शोक न होय ज्ञान उत्पन्न होते मुक्त हो जाता है ॥ ८२ ॥

पुण्यायतीर्थसेवानिरयायस्वपचनिधनगतिः ।

पुण्यायपुण्यफलंयस्यस्पर्शाभावेतुकिमेतेन ॥ ८३ ॥

तीर्थ सेवा से पुण्य होती है स्वपचके घर मरने से नरक होता है जिससे पुण्य वा पाप को स्पर्श नहीं है तो पुण्य पाप का फल स्वर्ग नरक कैसे होय ॥ ८३ ॥

दृष्टाग्राह्ययुतपादोयद्वदनिच्छन्नरःपतति ।

तद्वद्गुणपुरुषज्ञोह्यनिच्छन्नपिकैवलीभवति ॥ ८४ ॥

जैसे वृक्षके ऊपर चढ़ा मनुष्य डाररफिरते पाठ सकिला भूमिमें गिरि पड़ता है ओ गिरने की इच्छा नहीं है तैसेही प्रकृति पुरुष का विभाग जानने वाला चाहे इच्छा करे चाहे इच्छा न करे केवल ब्रह्मरूप होइ जाइगा ॥ ८४ ॥

परमार्थमार्गसाधनमभ्यस्यप्राप्ययोगमपिनाम ।

सुरलोकभोगभोगीसुदितमनामोदतेसुचिरम् ॥

मोक्ष साधन मार्ग में अभ्यास करिके योग में प्राप्त होइके बहुत दिनतक इंद्र लोकमें भोग कर्ता है और आनंदित होता है ॥ ८५ ॥

विषयेषुसर्वभौमःसर्वजनैःपूज्यतेयथाराजा ।

भुवनेषुसर्वदेवैर्योगभ्रष्टस्तथापूज्यः ॥ ८६ ॥

जैसे अखिल मंडलेश्वर राजा को सब देश वासी पूजने हैं तैसेही योगभ्र को चोदहो भुवन बिषे ये देवता गणहैं ते सब पूजा करते हैं ॥ ८६ ॥

महताकालेनपुमान्मानुष्यंप्राप्ययोगमभ्यस्य ।

प्राप्नोतिदिव्यममृतंयत्तत्परमंपदंविष्णोः ॥ ८७ ॥

बहू योग भ्रष्ट बहुत दिन स्वर्ग भोग करिके मनुष्य योनिमें पैदा होइके फिर योगाभ्यास करिके जो अधिनाशी विष्णुपदहैं तिसको प्राप्त होइ जाता है ॥ ८७ ॥

वेदान्तशास्त्रसखिलं निनोक्तशेषस्तु जगदाधारः ।

आर्यापञ्चाशीत्यावबंधपरमार्थसारमिदं ॥ ८८ ॥

जगतके धारण कर्ता शेष सपूर्ण वेदात शास्त्र को देखिके पचासो अर्था
छंद करिके यह परमार्थसारको प्रबन्ध किया ॥ ८८ ॥

इति श्री परमार्थसार भाषाटीका सहित सम्पूर्णम् ॥

सम्बत् १८३२